

---

प्रवचन-६३, श्लोक-८० से ८२, गाथा-६१, शुक्रवार, आषाढ शुक्ल ८, दिनांक ०२-०७-१९७१

---

यह नियमसार, व्यवहारचारित्र अधिकार है, इसमें ६०वीं गाथा, का ८०वाँ कलश है। पंच महाव्रत की बात आयी न? उसका कलश है।

---

१- आवास = निवासस्थान; घर; आयतन।

त्यजतु भव-भीरुत्वाद्भव्यः परिग्रहविग्रहं,  
 निरुपम-सुखावास-प्राप्त्यै करोतु निजात्मनि ।  
 स्थिति-मविचलां शर्माकारां जगज्जनदुर्लभां,  
 न च भवति महच्चित्रं चित्रं सता-मसतामिदम् ॥८०॥

**श्लोकार्थ - भव्य जीव,...** वास्तविक मुनिपने की दशा का पाँचवाँ व्रत कैसा होता है और उसे निश्चय अनुभव कैसा होता है, उस सहित बात है। निश्चय में अपना स्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द है, उसका अनुभव हुआ होता है। तदुपरान्त उसे स्वरूप की, शान्ति की, वीतरागता की विशेष रमणता हुई होती है। उसे उसकी भूमिका प्रमाण में पाँचवाँ महाव्रत ऐसा शुभराग, परिग्रह के त्याग का ऐसा शुभराग होता है, उसे यहाँ पाँचवाँ महाव्रत कहते हैं। वह जीव **भव्य जीव,...** वह भव्य जीव होता है। आत्मा की शान्ति अर्थात् आनन्द पूर्ण दशा, ऐसी मुक्ति का वह अभिलाषी होता है।

**भवभीरुता के कारण...** और उसे चार गति के भव का भय होता है। मुनि को चार गति में कहीं जाना, गति में जाना या भव में जाना, वह उन्हें भय होता है। चार गति का परिभ्रमण का उन्हें डर होता है। स्वर्ग गति हो तो भी वह कषाय की अग्नि से, स्वर्ग के देव भी कषाय के अंगारों से जल रहे हैं। गति में कहीं शान्ति नहीं है, इसलिए धर्मा-सम्यग्दृष्टि और मुनि... यहाँ मुनि की बात है न? **भवभीरुता...** किसी भी भव और भव का कारण भाव, उससे उन्हें डर होता है। यह नहीं... यह नहीं... अरे! मैं तो आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का साधक—ऐसा मैं, उसे भव के भाव से डर होता है।

ऐसे जीव **परिग्रहविग्रहं** विग्रह का अर्थ यहाँ विस्तार किया है। विग्रह का अर्थ किया। **परिग्रहविस्तार को छोड़ो...** जैनदर्शन का वास्तविक मुनिपना, वीतराग ने कहा हुआ कैसा होता है, इसकी सच्ची समझ देते हैं और वह मुनिपना अंगीकार करना कि जो मुक्ति का तात्कालिक कारण है। ऐसा उपदेश में वैराग्य कराते हैं। उस समस्त परिग्रह को छोड़ो। सच्चे मुनि हैं, उन्हें तो एक वस्त्र का धागा भी नहीं होता। समझ में आया? इसलिए कहा न? **परिग्रहविस्तार को छोड़ो...** परिग्रह का विग्रह-विस्तार जितना सब। एक वस्त्र का टुकड़ा रखे, तो भी वह ममत्व, मूर्च्छा और परिग्रह है और ऐसा भाव है, वहाँ मुनिपना होता नहीं।

कहते हैं **परिग्रहविस्तार को छोड़ो...** व्यवहार का उपदेश है न? और **निरुपम**

सुख के आवास की प्राप्ति हेतु... ऐसे भव से भीरु हैं और निरुपम – उपमारहित आत्मा का आनन्द, उसका आवास = निवासस्थान वह आत्मा। उसका घर वह आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द का घर आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द कहीं अन्यत्र नहीं है। अतीन्द्रिय सुख के आवास की प्राप्ति हेतु निज आत्मा में अविचल,... अपना सच्चिदानन्द प्रभु शाश्वत् आनन्द और ज्ञान का भण्डार आत्मा है, उसमें अविचल—चलित न हो, इस प्रकार स्थिर हो ( -ऐसा ) कहते हैं। देखो ! यह मुनिपना। आहाहा ! सुखाकार... शर्माकारं यह न ? शर्माकारं शर्म का आकार है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र है। प्रभु आत्मा इन पुण्य-पाप के राग से भिन्न और अपने अतीन्द्रिय आनन्द से अभिन्न, ऐसा आत्मतत्त्व है। आहाहा !

ऐसा सुख का आकार अर्थात् सुखमयी भगवान। तथा जगत्जनों को दुर्लभ ऐसी स्थिति ( स्थिरता ) करो... आहाहा ! साधारण प्राणी को आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द में रहना महा दुर्लभ है। मुनि को तो सुलभ है। उसे मुनि कहते हैं। आहाहा ! जो अपना अतीन्द्रिय आनन्द सम्यग्दर्शन में अनुभव किया था, पहले सम्यग्दर्शन में जाना था कि आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द है। उसमें अविचल स्थिति। आहाहा ! वह तो जगत के साधारण प्राणी को दुर्लभ है। आहाहा ! ओहोहो ! दुर्लभबोधि। पहले तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य दुर्लभ है। क्या चीज़ है, इसकी खबर नहीं। बाहर से मान बैठे। आहाहा ! जिसे जगत के भव में से निकलना है, उसे तो आत्मा की ऐसी अन्तरदशा अनुभव में होती है। तदुपरान्त अविचल स्थिति ( स्थिरता ) आत्मा में होती है। जगतजनों को तो दुर्लभ है। आहाहा ! मुनिदशा में अतीन्द्रिय आनन्द में मुनि स्थिर होते हैं। आहाहा ! यह मुनिपना। यहाँ तो अभी मुनिपने की खबर नहीं होती। क्या चीज़ है ? यह चल निकले मुनि हो गये। आहाहा !

दुर्लभ ऐसी स्थिति ( स्थिरता ) करो... आहाहा ! जो वस्तु आत्मा आनन्द का घर, आनन्द का निवास, अतीन्द्रिय आनन्द का धाम आत्मा है, उसका अनुभव किया कि यह आत्मा है। अब उसमें स्थिर हो, ऐसा कहते हैं। उसमें निवास कर, वास कर, स्थिर हो, इसका नाम साधुपना है और इस चारित्र्यदशा के बिना, ऐसी चारित्र्यदशा के बिना मुक्ति नहीं होती। कहो, समझ में आया ?

और यह ( निजात्मा में अचल सुखात्मक स्थिति करने का कार्य ) सत्पुरुषों को

कोई महा-आश्चर्य की बात नहीं है;... आहाहा! सन्तों को, वीतरागी सन्त को, वीतरागी मुनियों को अन्तर के स्वभाव में रहना, स्थिर होना, वह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वह तो इसके स्वभाव की स्थिति ही ऐसी है। आहाहा! मुनि तो छठवें-सातवें गुणस्थान में हजारों बार झूलते हैं। एक दिन में हजारों बार अप्रमत्तदशा आती है। छठा-सातवाँ गुणस्थान। घड़ीक में ससम। आनन्द में लीन हो जाते हैं, फिर विकल्प उठता है, वह छठवाँ आ जाता है। फिर सातवाँ... फिर छठवाँ... देखो! यह दशा। जैनदर्शन के—वास्तविक दर्शन के सन्त ऐसे होते हैं। आहाहा!

सत्पुरुषों को कोई महा-आश्चर्य की बात नहीं है;... ऐसा कहते हैं। ओहो! जिसने आत्मा को, जैसे हथेली की रेखा को देखते हैं, वैसे अन्दर देखा है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में, पहले से आत्मा ऐसा जाना और देखा है। कहते हैं, ऐसे धर्मात्मा को आगे बढ़कर स्वरूप में स्थिर होना, वह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वह तो उनका स्वरूप ही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! धन्य अवतार है न! समझ में आया? भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है। सत् शाश्वत् आनन्द और ज्ञान का वह सागर है। आहाहा! उसमें शरीर, वाणी, मन तो नहीं, परन्तु दया, दान, व्रत के विकल्प राग, वह भी उस स्वरूप में नहीं। ऐसी वह चीज़ है। उस चीज़ में, उस वस्तु में बसना, वस्तु में बसना, ऐसे आनन्द में स्थिर होना सत्पुरुषों के लिए कोई आश्चर्यकारी नहीं है, यही उनकी दशा होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

असत्पुरुषों को आश्चर्य की बात है। आहाहा! जिन्हें, आत्मा आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड आत्मा, ऐसी जिन्हें खबर नहीं और पर में, धूल में, पुण्य में, पाप में सुखबुद्धि मानी है, ऐसे अज्ञानियों को आत्मा में स्थिर होना, वह आश्चर्यकारी है। उन्हें आश्चर्य की बात है। अर्थात् वे नहीं कर सकते। आहाहा! पाँचवाँ महाव्रत था न! निर्ग्रन्थदशा को ऐसा विकल्प होता है, नग्नदशा। जैन के सच्चे मुनि तो अन्तर में तीन कषाय के अभाववाले, बाहर में अत्यन्त नग्नदशा होती है, उन्हें जैन के मुनि कहा जाता है। अकेले नग्न भी नहीं और अकेले तीन कषाय का अभाव हुआ हो और शरीर में वस्त्रादि रहें, ऐसा भी नहीं है। ऐसी दशा है। वीतराग परमेश्वर की यह आज्ञा है, ऐसी इसे पहले पहिचान करके मानना चाहिए। यह ८०वाँ कलश हुआ।

गाथा-६१

प्रासुगमगणेण दिवा अवलोगंतो जुगप्पमाणं हि ।  
 गच्छइ पुरदो समणो इरियासमिदी हवे तस्स ॥६१॥  
 प्रासुकमार्गेण दिवा अवलोकयत् युगप्रमाणं खलु ।  
 गच्छति पुरतः श्रमणः ईर्या-समितिर्भवेत्तस्य ॥६१॥

अत्रेर्यासमितिस्वरूपमुक्तम् । यः परमसंयमी गुरुदेवयात्रादिप्रशस्तप्रयोजनमुद्दिश्यैक-  
 युगप्रमाणं मार्गमवलोकयन् स्थावरजङ्गमप्राणिपरिरक्षार्थं दिवैव गच्छति, तस्य खलु परम-  
 श्रमणस्येर्यासमितिर्भवति । व्यवहारसमितिस्वरूपमुक्तम् । इदानीं निश्चयसमितिस्वरूप-मुच्यते ।  
 अभेदानुपचाररत्नत्रयमार्गेण परमधर्मिणमात्मानं सम्यग् इता परिणतिः समितिः । अथवा  
 निजपरमतत्त्वनिरतसहजपरमबोधादिपरमधर्माणां संहतिः समितिः । इति निश्चय-व्यवहारसमितिभेदं  
 बुद्ध्वा तत्र परमनिश्चयसमितिमुपयातु भव्य इति ।

मुनिराज चलते मार्गं दिन में, देख आगे की मही ।  
 प्रासुक धुरा जितनी, उन्हें ही समिति ईर्या है कही ॥६१॥

अन्वयार्थः—[ श्रमणः ] जो श्रमण, [ प्रासुकमार्गेण ] प्रासुकमार्ग पर [ दिवा ]  
 दिन में [ युगप्रमाणं ] धुरा प्रमाण [ पुरतः ] आगे [ खलु अवलोकयन् ] देखकर  
 [ गच्छति ] चलता है, [ तस्य ] उसे [ ईर्यासमितिः ] ईर्यासमिति [ भवेत् ] होती है ।

टीका :—यहाँ ( इस गाथा में ), ईर्यासमिति का स्वरूप कहा है ।

जो परमसंयमी<sup>१</sup> गुरुयात्रा ( गुरु के पास जाना ), देवयात्रा ( देव के पास

१- परमसंयमी मुनि को ( अर्थात्, मुनियोग्य शुद्धपरिणतिवाले मुनि को ) शुद्धपरिणति के साथ वर्तता हुआ जो  
 ( हठरहित ) ईर्यासम्बन्धी ( गमनसम्बन्धी; चलनेसम्बन्धी ) शुभोपयोग, वह व्यवहार ईर्यासमिति है ।  
 शुद्धपरिणति न हो, वहाँ शुभोपयोग हठसहित होता है; वह शुभोपयोग तो व्यवहारसमिति भी नहीं कहलाता  
 [ इस ईर्यासमिति की भाँति अन्य समितियों का भी समझ लेना ]

जाना ) आदि प्रशस्त प्रयोजन का उद्देश्य रखकर, एक धुरा ( चार हाथ ) जितना मार्ग देखते-देखते, स्थावर तथा जङ्गम प्राणियों की परिरक्षा ( समस्त प्रकार से रक्षा ) के हेतु दिन में ही चलता है, उस परमश्रमण को ईर्यासमिति होती है। ( इस प्रकार ) व्यवहारसमिति का स्वरूप कहा गया।

अब, निश्चयसमिति का स्वरूप कहा जाता है – अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयरूपी मार्ग पर परमधर्मी ऐसे ( अपने ) आत्मा के प्रति सम्यक् 'इति' ( गति ) अर्थात्, परिणति, वह समिति है; अथवा निज परमतत्त्व में लीन सहज परमज्ञानादिक परमधर्मों को संहति ( मिलन; संगठन ), वह समिति है।

इस प्रकार निश्चय और व्यवहाररूप समितिभेद जानकर, उनमें ( उन दो में से ) परम-निश्चयसमिति को भव्य जीव प्राप्त करो।

---

गाथा-६१ पर प्रवचन

---

६१ वीं गाथा। अब समिति की बात आयी। ईर्यासमिति। मुनि को आत्मा के भानसहित ईर्यासमिति। निश्चयसमितिसहित व्यवहारसमिति कैसी होती है, उसकी बात है। आहाहा! ६१वीं गाथा।

पासुगमग्गेण दिवा अवलोगंतो जुगप्पमाणं हि ।

गच्छइ पुरदो समणो इरियासमिदी हवे तस्स ॥६१॥

नीचे हरिगीत, मूल गाथा का....

मुनिराज चलते मार्ग दिन में, देख आगे की मही।

प्रासुक धुरा जितनी, उन्हें ही समिति ईर्या है कही ॥६१॥

टीका : यहाँ ( इस गाथा में ), ईर्यासमिति का स्वरूप कहा है। जो परमसंयमी... परमसंयमी मुनि, ऐसा पहले लिया है। उन्हें ऐसी व्यवहारसमिति होती है। नीचे अर्थ किया है। परमसंयमी मुनि को ( अर्थात्, ... ) नीचे नोट ( मुनियोग्य शुद्धपरिणतिवाले मुनि को )... आहाहा! साधु के योग्य उसे वीतरागता, अतीन्द्रिय आनन्द की दशा प्रगट हुई है, शुद्धता-पवित्रता प्रगट हुई है। ( जैसे ) पर्वत में से मीठा पानी झरता है, वैसे भगवान आत्मा

आनन्द का पर्वत है, उसमें से अतीन्द्रिय आनन्द का झरना जिसे बहता है। आहाहा! ऐसी शुद्धपरिणति, ( शुद्धपरिणतिवाले मुनि को ) शुद्धपरिणति के साथ... ऐसी आनन्द की शुद्धदशा के साथ वर्तता हुआ... सहचर-साथ में रहनेवाला ( हठरहित ) ईर्यासम्बन्धी... सहज ऐसा विकल्प होता है। वहाँ हठ नहीं होती। ( गमनसम्बन्धी; चलनेसम्बन्धी ) शुभोपयोग,... उन्हें शुभोपयोग होता है। है वह पुण्यभाव है। व्यवहारसमिति, परन्तु निश्चय आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द की शुद्धदशा की भूमिका प्रगट हुई है, उसे ऐसा हठरहित का शुभोपयोग होता है। बात-बात में बहुत अन्तर है। अभी की शैली और वीतराग का मार्ग सब फेरफार.. फेरफार..

वह व्यवहारसमिति है। कौन ? जिसे आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है और अतीन्द्रिय आनन्दसहित शुद्धदशा प्रगट हुई है। वीतरागी आनन्द आदि दशा प्रगट हुई है, उसे गमन सम्बन्धी शुभोपयोग / राग की मन्दता का भाव होता है। हठ (रहित होता है), उसे व्यवहारसमिति कहा जाता है। आहाहा! शुद्धपरिणति न हो,... जहाँ पहले शुद्धदशा ही, वीतरागदशा ही प्रगट नहीं हुई। भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, आनन्द के धाम में से आनन्द का प्रवाह शुद्धपरिणतिरूप से जिसे हुआ ही नहीं, वहाँ शुभोपयोग हठसहित होता है;... ऐसे देखकर चलने का शुभोपयोग अज्ञानी को होता है परन्तु हठवाला होता है। हठ, उसे तो यहाँ व्यवहारसमिति भी नहीं कहलाता... समझ में आया ?

वह शुभोपयोग तो व्यवहारसमिति भी नहीं कहलाता [ इस ईर्यासमिति की भाँति अन्य समितियों का भी समझ लेना। ] ऐसे भाषासमिति, ऐषणासमिति, आदाननिक्षेपण... उनमें भी उन्हें शुभोपयोग होता है, परन्तु वह शुद्धपरिणतिसहित शुभोपयोग सहचर होता है। आत्मा के शुद्धता के भान में शुद्धतापरिणतिरूप वीतराग छठवें गुणस्थान के योग्य। उसके योग्य जो वीतरागदशा। शान्त.. शान्त.. शान्त.. अन्तर में ऐसी अविकारीदशा प्रगट हुई है, उसे ऐसा गमन सम्बन्धी शुभोपयोग होता है, वह व्यवहारसमिति कहलाता है। वह पुण्यबन्ध का कारण है। परन्तु ऐसा होता है। जिसे शुद्ध का कुछ सम्यग्दर्शन का भान नहीं, सम्यक्चारित्र क्या, इसकी भी खबर नहीं; ऐसे ईर्यासमिति में शुभभाव होता है, वह हठवाला होता है। उसे मिथ्यात्वसहित पुण्य बँधता है। मिथ्यात्व का महापाप तो साथ में होता है। आहाहा! निश्चय सत् क्या है, वह रह गया। मात्र व्यवहार की खोटी रूढ़ियाँ रह गयीं। आहाहा! मार्ग तो वीतराग का यह तो परमेश्वर का मार्ग है। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ,

जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक प्रभु ने देखे हैं, ऐसी वीतरागदशासहित का केवलज्ञान, उनकी वाणी में तो यह आया है, बापू! मुनिपने की दशा। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ऐसी दशा होवे और निश्चय न होवे तो...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** निश्चय न होवे तो कुछ सच्चा ही नहीं है। शून्य है। रण में शोर मचाने जैसा है।

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या कहते हैं ? यहाँ आत्मा की बात है। वह संघ भी खोटा और वह भी खोटे। खोटे-खोटे की बात यहाँ नहीं है। यह तो आत्मा का स्वभाव सर्वज्ञ परमेश्वर ने वीतराग ने—केवलज्ञानी तीर्थकरदेव ने कहा और उन्होंने तो पूर्ण प्रगट किया। अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त दर्शन, अनन्त चतुष्टय प्रभु को प्रगट हुआ। उन्होंने कहा कि जिसे आत्मदर्शन का भान है, आत्मा शुद्ध चैतन्य हूँ, राग का ईर्याविकल्प व्यवहार आवे, उसका भी मैं कर्ता नहीं। आहाहा! ईर्यासमिति का देखकर चलने का शुभभाव आवे, वह मेरा कर्तव्य नहीं है परन्तु आये बिना रहता नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। क्या हो ?

जिस पन्थ से गणधर गये, जिस पन्थ का स्वीकार इन्द्रों ने किया, जिस पन्थ में महाचक्रवर्ती, चक्रवर्ती का राज्य छोड़कर... आहाहा! जैसे कफ छोड़े, वैसे छियानवें हजार स्त्रियाँ छोड़कर अतीन्द्रिय आनन्द में, अन्तर के आनन्द में आत्मा में प्रभु रमने लगे। ऐसा मुनिपना है। आहाहा! धन्य अवतार! वह दशा आये बिना इसे मुक्ति नहीं हो सकती परन्तु उससे पहले उसका भान तो होना चाहिए न (कि) कैसा मुनिपना? कैसा समकित? कैसा ज्ञान? किसे चारित्र कहना? किसे व्यवहार कहना? किसे निश्चय कहना? कुछ खबर बिना ये सब चार गति में भटकने के मार्ग हैं।

**परमसंयमी मुनि को..** पहला शब्द यह लिया। क्योंकि वह व्यवहारसमिति की-ईर्या की बात है न? परन्तु व्यवहार किसे होता है? कि परमसंयमी मुनि को। जिन्हें अभी आत्मा का सम्यग्दर्शन क्या, इसका भान नहीं, इसकी पहिचान नहीं! उसे व्यवहार से देखकर चले और यह करे, वह सब मिथ्यात्वसहित हठवाला शुभभाव है। आहाहा! ऐसे परमसंयमी मुनि को अन्तर में तो शुद्धता बहुत प्रगट हुई है। तीन कषाय-अनन्तानुबन्धी,



अप्रत्याख्यानावरणीय, प्रत्याख्यानावरणीय तीन का जिसे अभाव वर्तता है, ऐसे मुनि को गुरुयात्रा... लो आया। पुद्गलयात्रा था न? पुद्गलयात्रा बिना, पुद्गल बिना यात्रा नहीं हो सकती। लो आया। यह गुरुयात्रा। धर्मात्मा, आत्मज्ञानी, ध्यानी, आनन्द में रहनेवाले सच्चे सन्त को भी गुरु के पास जाने का विकल्प आता है। अपने गुरु हों, आनन्द विशेष अधिक गुण में हैं, उनके पास जाने का विकल्प होता है, वह शुभविकल्प है। उस गमन में उन्हें शुभभाव होता है। देखकर चलना।

देवयात्रा... साक्षात् परमात्मा विराजते हों, उनके दर्शन करने जाना हो या देवयात्रा... सर्वज्ञ परमात्मा की सच्ची वीतरागमूर्ति, ऐसे तीर्थादि में जाना हो। आदि प्रशस्त प्रयोजन... लो, ये सब प्रशस्त प्रयोजन हैं, शुभराग के प्रयोजन हैं। गुरु के पास शिक्षा लेने जाना दो-पाँच कोस दूर हों तो। इत्यादि गमन करना, परन्तु है वह परमसंयमी सन्त स्वयं। उन्हें ऐसा शुभयोग का भाव आता है। ऐसे प्रशस्त प्रयोजन का उद्देश्य रखकर, एक धुरा जितना मार्ग देखते-देखते,... ऐसे बाहर नजर रखे कि कोई जीव-जन्तु न हो। यहाँ शुभ उपयोग है न? आहाहा!

एक धुरा जितना मार्ग देखते-देखते, स्थावर तथा जङ्गम प्राणियों की परिरक्षा के हेतु... प्रासुक मार्ग। उसमें कोई जीवजन्तु न हो, ऐसे मार्ग में मुनि गमन करे। नीचे वनस्पति हो, हरिकाय उगी हो, त्रस-चींटी, मकोड़ा, खपेड़ी उड़ती होती है। बारीक-बारकी खपेड़ी। ऐसा जहाँ हो, वहाँ मुनि विहार न करे, उसमें गमन न करे। निर्दोष मार्ग हो, जिसमें अचेतन हो गया हो, लोगों के पैर से सब मर्दन होकर अचेतन (प्रासुक) हुआ हो, उसमें मुनि ईर्यासमिति से गमन करते हैं। आहाहा! स्थावर, एकेन्द्रिय प्राणी, हों! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति, ये पाँच एकेन्द्रिय स्थावर जीव हैं। उनकी भी हिंसा न हो, ऐसे चलते हैं। दिशा में, जंगल में जाना हो तो जहाँ हरितकाय उगी हो, वहाँ जंगल (दस्त) नहीं जाते। यह पठवा में आता है। आहाहा! नीचे यह वनस्पति देखो न, चातुर्मास में तो कितनी जमी होती है। आहाहा! उसमें नहीं जाते। जहाँ बालू हो, बालू के नाला (धोरे) हो, खाली पानीरहित, वहाँ जाते हैं। वे वहाँ गमन करते हैं। यहाँ गमन नहीं करते।

यह प्राणियों की परिरक्षा के हेतु... उन्हें दुःख न हो, यह अपेक्षा। रक्षा की व्याख्या इतनी। दिन में ही चलता है,... मुनि रात्रि में नहीं चलता। रात्रि में यह तो घण्टे-घण्टे, दो-दो घण्टे अन्धकार में (चले), गर्मी है तो शीघ्र पहले पहुँच जाएँ, चाय को पहुँचने।

आहाहा! वह तो सम्यग्दर्शन और ज्ञानरहित व्यवहार का भी ठिकाना नहीं होता। तुमने तो सब देखा होगा, नहीं? रात्रि को जल्दी उठे। चैत्र महीना की धूप हो। वहाँ शीघ्र पहुँच जाँ। चाय को फिर देरी होगी। अरे रे! तेरे व्यवहार का भी ठिकाना नहीं है। निश्चय तो है नहीं, वहाँ व्यवहार का भी ठिकाना नहीं है, उसे साधु (माने)। कुसाधु को साधु मानने जैसी मान्यता है। आहाहा! ऐसा सन्तों का मार्ग, सर्वज्ञ परमेश्वर का है। तीर्थकरदेव के मार्ग में ऐसा है। अन्यत्र तो कहीं है ही नहीं।

दिन में ही चलता है, उस परमश्रमण को ईर्यासमिति होती है। देखो! वापस यहाँ लिया। यहाँ यह शब्द है, हों! पहले परमसंयमी है। वहाँ फिर परम साधु है। परमश्रमण है। टीका में ही है। परमश्रमण अर्थात् अकेले अज्ञानी को ऐसा हो, यह नहीं। आहाहा! जिसे शुद्धभाव प्रगट हुआ है, वीतरागदशा जिसने अन्तर में अनुभव की है और प्रगट हुई है, ऐसे को ऐसा व्यवहार, यह समिति होती है। ( इस प्रकार ) व्यवहारसमिति का स्वरूप कहा गया। पाठ में था वह। अब वापस निश्चय की बात करते हैं। इसके साथ ही साथ।

अब, निश्चयसमिति का स्वरूप कहा जाता है... सच्ची समिति इसे कहते हैं। देखकर चलने का विकल्प तो उपचार, व्यवहारसमिति है, वह तो पुण्यबन्ध का कारण है, वह धर्म नहीं है। व्यवहारसमिति भी धर्मी को धर्म नहीं है, शुभभाव है। अब निश्चयसमिति। निश्चयसमिति का स्वरूप कहा जाता है – अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयरूपी मार्ग पर परमधर्मी ऐसे ( अपने ) आत्मा के प्रति... देखो! बाहर चलते हैं न व्यवहारी? बाहर मार्ग में... तो अब निश्चयवाला? अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयरूपी मार्ग पर... आहाहा! एक तो शब्दों को समझना कठिन पड़े। अभेद-अनुपचार। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, उसका सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र निर्विकल्प स्वभाव के आश्रय से होता है, उसे अभेद रत्नत्रय कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अभेद कहो या अनुपचार कहो। उपचार नहीं। रत्नत्रयरूपी मार्ग में... आहाहा! अन्तर के स्वरूप में शुद्ध चैतन्य की सम्यग्दर्शनदशा, शुद्ध चैतन्य की सम्यग्ज्ञान, स्वसंवेदन ज्ञान की निर्मल दशा और स्वरूप में रमणतारूप वीतरागी चारित्र, ऐसे मार्ग में जो रमता है, उसे निश्चयसमिति कहते हैं। आहाहा!

अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयरूपी... पृथ्वी में बाहर धुरा प्रमाण देखकर चले। कोई जीव को, परजीव को दुःख न हो, यह शुभोपयोग है परन्तु यह किसे होता है? जिसे अन्तर में अभेद रत्नत्रय, वस्तु भगवान आत्मा, आत्मा प्रभु स्वयं सच्चिदानन्द है, उसका जिसे

सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र हुआ है। आत्मा का साक्षात्कार जिसे हुआ है, वह रत्नत्रयरूपी मार्ग पर... वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो परिणति, उस मार्ग में गति करे, ऐसा कहते हैं। परमधर्मी ऐसे ( अपने ) आत्मा... ऐसा। रत्नत्रयरूपी मार्ग पर परमधर्मी ऐसे ( अपने ) आत्मा के प्रति सम्यक् 'इति'... परिणति। आत्मा की सम्यक् शुद्धदशा, उसे सच्ची समिति कहा जाता है। उसे संवर और निर्जरारूप समिति कहने में आता है। वह शुभ था कि देखकर चलना, वह तो पुण्यबन्ध का कारण शुभोपयोग था। समझ में आया? अभी बात समझते पकड़ में नहीं आती। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शुद्धभाव की परिणति है न? उसके साथ यह शुभ है। समिति है न, अन्दर उपयोग स्थिर नहीं हुआ। शुद्धपरिणति भी निश्चयमोक्षमार्ग में आत्मा को जोड़ा हुआ है। उसमें चलता है, गति करता है। अन्तःसमिति और साथ में यह शुभोपयोग होता है, वह व्यवहार है, यह (शुद्ध उपयोग) निश्चय है। निश्चय, वह धर्म है और व्यवहार, वह पुण्य है। ऐसी बात है। वह बाहर में मार्ग में देखकर चले। यह अन्तर के मार्ग में देखकर चले। अपने आत्मा के प्रति सम्यक् गति, ऐसा, अर्थात् परिणति, शुद्धदशा, उसे सच्ची समिति कहा जाता है। अब इसकी तो गन्ध भी नहीं होती और व्यवहारसमिति में यह है... यह है... और विधि करो। विधि से धर्म करो, विधि से देखकर चलो। परन्तु किसको?

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मिच्छामि दुक्कडं, यह तो आता है।

**मुमुक्षु :** शुभभाव अविधि है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु वह शुभभाव ही अभी निश्चय से अविधि है। सूक्ष्म बात है। विधि से करना, अविधि न होने देना। खमासणा में अमुक में-अमुक में... अरे! बेचारा मजदूरी कर-करके मर जाता है। पुण्यबन्ध का भी ठिकाना नहीं होता। मिथ्यासहित है न? यहाँ तो भगवान आत्मा अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान वीतरागी परिणति में प्रवर्तता है, उसका आत्मा सम्यक् गतिरूप से परिणमा है, उसे समिति कहा जाता है। वह सच्ची समिति है। सन्तों की सच्ची समिति। आहाहा!

**मुमुक्षु :** यह भाव का काम है....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा होवे, वहाँ ऐसा होता है। स्थिर न हो गया हो उसे। कहते थे न वे। निश्चय हो, उसे फिर क्या दिक्कत ? अरे ! जिसे पूर्ण वीतरागता प्रगट नहीं हुई, उसे ऐसा होता है, वहाँ ऐसा शुभविकल्प आता है, नहीं तो वीतराग केवली हो गया हो। कहा न ? गुरु के पास जाना, देव के पास जाना। उसे ऐसा भाव आता है, जानता है कि यह शुभराग है। व्यवहार से ऐसी दशा है। यद्यपि ज्ञानी तो व्यवहार से मुक्त है, परन्तु उस मुक्तदशा में ऐसा एक परविकल्प उठता है, ऐसा वह जानता है। आहाहा ! गजब बात ! लो, मुनि को शुभोपयोग होता है। एक ओर कहते हैं समकिति निश्चय में लीन, व्यवहार से मुक्त है। वह रखकर यह बात है। आहाहा ! परन्तु बात यह है कि यह आत्मा क्या चीज़ है, इसकी खबर नहीं होती। आत्मा अर्थात् कुछ है बस। परन्तु वह अन्दर कौन है ? अनन्त आनन्द का धाम सच्चिदानन्द प्रभु है वह। आहाहा ! महाप्रभु की तो खबर नहीं होती और इन बाहर के भगवान की पहिचान करने निकले। ऐसी जिसे समिति की निश्चयदशा होती है, उसे वह व्यवहार होता है अथवा...

**मुमुक्षु :** परमधर्मी...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नाना परमधर्मी ऐसा अपना आत्मा। यहाँ धर्मी अर्थात् धर्म का धारक, ऐसा आत्मा अपने आत्मा के प्रति सम्यक् परिणति है ऐसी। ऐसा, धर्मी तो त्रिकाल वस्तु है, परन्तु उसकी परिणति है न, वीतराग परिणति वर्तमान है।

**परमधर्मी ऐसे ( अपने ) आत्मा के प्रति सम्यक् 'इति' ( गति ) अर्थात्, परिणति,...** उस ओर की झुकाववाली दशा। और शुभभाव की दशा परसन्मुख के झुकाववाली है, ऐसा कहना है। आहाहा ! कोई कहे, परन्तु ऐसा समझकर हमें क्या काम है ? परन्तु तुझे समकित क्या ? साधुपना क्या ? संवर-निर्जरा क्या ? नव तत्त्व को भलीभाँति जानना पड़ेगा या नहीं ? नव तत्त्व में संवर-निर्जरा किसे कहना ? मुनिपना अर्थात् संवर, निर्जरा। जिसे अभी नव तत्त्व की खबर नहीं। उसे अकेला आत्मा अन्दर से छाँटकर अलग करके अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा ! नव तत्त्व के तत्त्व की अन्दर में अभी उसका ठिकाना नहीं होता। वीतराग कहते हैं उस प्रकार, हों ! वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र यह बात कहीं किसी धर्म में है नहीं। यह बात कहीं नहीं हो सकती। वीतराग सर्वज्ञ के अतिरिक्त सबने कल्पना से सब बातों की हैं। समझ में आया ?

निज परमतत्त्व में लीन सहज परमज्ञानादिक परमधर्मों को संहति... लो! ( मिलन; संगठन )... एकाकार होना। परमज्ञानादिक परमधर्मों को संहति... उसमें एकाकार होना। आत्मा के प्रति था न पहला? उसमें परमधर्मों के प्रति। वह धर्मों के प्रति था, इसे धर्म के प्रति, स्वभाववान के प्रति परिणति थी। यह स्वभाव में परिणति, ऐसा कहते हैं। धर्म है न? निज परमतत्त्व में लीन सहज परमज्ञानादिक परमधर्मों... ऐसा। वह परमधर्मों था। यहाँ सहज परमज्ञानादिक परमधर्मों... उसकी संहति ( मिलन; संगठन ),... स्वभाव की एकता। वह समिति है। आहाहा!

इस प्रकार निश्चय और व्यवहाररूप समितिभेद जानकर,... देखो! दोनों को बराबर जानकर कि निश्चय सत्य यह है, व्यवहार उपचार यह है। ( उन दो में से )... देखो अब। परम-निश्चयसमिति को भव्य जीव प्राप्त करो। ठीक। अधिकार व्यवहार का है। व्यवहार को प्राप्त करो नहीं, व्यवहार आ जाता है। इसलिए कठोर लगे न यह। मुनि हैं और अधिकार व्यवहार का चलता है परन्तु यह व्यवहार, निश्चय को समझाने के लिए, निश्चय में स्थिरता हो, उसके लिए व्यवहार है। निश्चय को प्राप्त करना है, व्यवहार को प्राप्त करना नहीं। व्यवहार तो बीच में आ जाता है। गजब बात!

यह तो जिसे संसार का, चार गति का डर लगा हो। कहीं सुख नहीं स्वर्ग में या सेठई में या धूल में। सुख आत्मा में है, ऐसी जिसे रुचि और गरज हुई हो, उसे मुनिपना कैसा होता है, उसे पालने का, उसे समझना चाहिए। और यह मुनिपने की ऐसी दशा न हो, उसे मुनिपना मानना, तो माननेवाले को भी मिथ्यात्व लगता है। समझ में आया? वह तो मिथ्यात्वी है ही। जिसे मुनिपना नहीं, उसे मुनिपना मानता है परन्तु उसे मुनिपना जो माने... मुनि है न? साधु है न। पाँचवें काल के उत्कृष्ट न हों भले, परन्तु साधु हैं न? साधु ही नहीं, सुन न! दृष्टि ही मिथ्यात्व है। राग से, क्रिया से धर्म मानता है और राग का व्यवहार का भी ठिकाना नहीं। वह निश्चय और व्यवहार दोनों से भ्रष्ट है। आहाहा! कठिन काम, बापू! जगत के साथ खड़े रहना। वीतरागमार्ग में रहना।

( उन दो में से ) परम-निश्चयसमिति... वापस। व्यवहार... परम-निश्चयसमिति को भव्य जीव प्राप्त करो। आहाहा! ओहो!

श्लोक-८१

अब, ६१ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज चार श्लोक कहते हैं—

( मंदाक्रांता )

इत्थं बुद्ध्वा परमसमितिं मुक्तिकान्तासखीं यो,  
मुक्त्वा सङ्गं भव-भयकरं हेम-रामात्मकं च ।  
स्थित्वाऽपूर्वं सहजविलसच्चिच्चमत्कारमात्रे,  
भेदाभावे समयति च सः सर्वदा मुक्त एव ॥८१॥

( वीरछन्द )

परम समिति को मुक्ति वधू की सखी जानते हैं जो जीव ।  
भवभयकारी कंचन कामिनी संग छोड़ते भव्य सदैव ॥  
सहज अपूर्व स्वरूप विलसता चमत्कार चैतन्य अभेद ।  
उसमें थिर होकर परिणामते सदा मुक्त रहते हैं वे ॥

[ श्लोकार्थः— ] इस प्रकार मुक्तिकान्ता की ( मुक्तिसुन्दरी की ) सखी परम—समिति को जानकर, जो जीव भवभय के करनेवाले कञ्चन कामिनी के संग को छोड़कर, अपूर्व, सहज-विलसते ( स्वभाव से प्रकाशते ), अभेद चैतन्यचमत्कारमात्र में स्थित रहकर ( उसमें ) सम्यक् 'इति' ( गति ) करते हैं; अर्थात्, सम्यक् रूप से परिणामित होते हैं, वे सर्वदा मुक्त ही हैं ।

श्लोक-८१ पर प्रवचन

अब, ६१ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज चार श्लोक कहते हैं— पहली समिति है न, पहली । ८१ वाँ कलश

इत्थं बुद्ध्वा परमसमितिं मुक्तिकान्तासखीं यो,  
मुक्त्वा सङ्गं भव-भयकरं हेम-रामात्मकं च ।

स्थित्वाऽपूर्वे सहजविलसच्चिच्चमत्कारमात्रे,  
भेदाभावे समयति च सः सर्वदा मुक्त एव ॥८१॥

अब यहाँ आया, लो ! इस प्रकार मुक्तिकान्ता की ( मुक्तिसुन्दरी की ) सखी... तेरी पूर्ण आनन्ददशा, ऐसी मुक्ति। पूर्ण आनन्ददशा, ऐसी सिद्धदशा की सखी परमनिश्चय समिति। आहाहा ! यह उसकी सखी है। मुक्तिकान्ता पूर्ण आनन्दस्वरूप सिद्धदशा की सखी यह निश्चयसमिति है। स्वरूप में एकाकार होकर परिणमना, वीतरागदशारूप से आत्मा में लीन होना अथवा अनन्त धर्मों-स्वभाव में लीन होना, ऐसी परम—समिति को जानकर, जो जीव भवभय के करनेवाले... लो। हेम, रामादि। है न ? हेम अर्थात् सोना। रामा अर्थात् स्त्री। भवभय के करनेवाले कञ्चन कामिनी के संग को छोड़कर,... आहाहा ! कंचन और कामिनी चोकी आड़ी आती है न ? 'चोकी आड़ी श्याम की, राम की रमत को वही लूटे' नरसिंह मेहता कहते हैं। व्यवहार से। यह बात है, वह वहाँ कहाँ है ? 'कंचन और काम की चोकी आड़ी श्याम की, राम की रमत को वह लूटे।' यहाँ तो संग न करना, इतनी बात है। कंचन आदि परिग्रह। उसमें कंचनादि, वस्त्रादि सब आया और कामिनी अर्थात् स्त्री, उसके संग को छोड़कर, उस ओर के झुकाव के भाव को छोड़ दे। आहाहा !

अपूर्व, सहज-विलसते... अब उसे छोड़कर जाना कहाँ ? अपूर्व, सहज-विलसते... आहाहा ! ( स्वभाव से प्रकाशते ),... आहाहा ! सहजानन्द भगवान् अभेद चैतन्य-चमत्कारमात्र में... देखो ! भगवान् चैतन्यस्वरूप ज्ञानानन्दस्वरूप प्रभु, ऐसा अभेद एकरूप, उसमें स्थित रहकर, उसमें स्थित रहकर सम्यक् 'इति' ( गति ) करते हैं; अर्थात्, सम्यक् रूप से परिणमित होते हैं, वे सर्वदा मुक्त ही हैं। वह मुक्त ही है, कहते हैं। आहाहा ! भगवान् आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, वह अतीन्द्रिय आनन्द में, ऐसे चैतन्य चमत्कारमात्र में, अभेद चैतन्य चमत्कार, ऐसा। उसमें भेद नहीं। एकरूप त्रिकाल स्थित रहकर सम्यक् गति करे, परिणति करे, शुद्धरूप से हो। वे सर्वदा मुक्त ही हैं। उसकी परिणति रागरहित हुई, वह मुक्त ही है, कहते हैं। आहाहा ! वे सर्वदा मुक्त ही हैं। वापस। मुक्त ही। 'सर्वदा मुक्त एव' मुक्त ही है।

मुक्त समकिति में आता है न। समयसार कलश। यह चारित्रवन्त मुक्त कहा। वहाँ समकिति को मुक्त कहा है। आहाहा ! यह बात सुनना भी इसे कठिन, उलझनजनक लगती

है। यह क्या कहते हैं ? भगवान् आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उस अतीन्द्रिय आनन्द में प्रवेश करके शुद्धपरिणति प्रगट करना, वह जीव मुक्त है, (ऐसा) कहते हैं। द्रव्य और गुण तो मुक्त थे, परिणति ने वीतरागता प्रगट की, वह मुक्त हो गयी। समझ में आया ? द्रव्य अर्थात् आत्मा और गुण अर्थात् शक्तियाँ, वे तो मुक्त ही हैं। जो पर्याय में, राग में एकता थी, वह टूटकर स्वभाव के साथ एकता हुई और शुद्धदशा हुई, वह मुक्त है। पर्याय में भी मुक्त है। व्यवहार समिति का अधिकार, उसमें ऐसे कलश डाले हैं। मुश्किल से व्यवहार का अधिकार आया, वहाँ फिर यह कहा। परन्तु इस निश्चय के बिना व्यवहार नहीं है, यहाँ तो ऐसा सिद्ध करना है।

### श्लोक-८२

( मालिनी )

जयति समितिरेषा शीलमूलं मुनीनां,  
 त्रसहति-परिदूरा स्थावराणां हतेर्वा।  
 भवदवपरितापक्लेशजीमूतमाला,  
 सकलसुकृतसीत्यानीकसन्तोषदायी ॥८२॥

( हरिगीतिका )

जयवन्त हो यह समिति जो मुनि शील गुण का मूल है।  
 यह त्रस तथा स्थावरों के घात से अति दूर है ॥  
 भव दवानल तापरूपी क्लेश करती शान्त है।  
 सुकृतरूपी धान्य को संतोष दायक मेघ है ॥

[ श्लोकार्थ : — ] जो ( समिति ), मुनियों को शील का ( चारित्र का ) मूल है, जो त्रसजीवों के घात से तथा स्थावरजीवों के घात से समस्त प्रकार से दूर है, जो भव—दावानल के परितापरूपी क्लेश को शान्त करनेवाली तथा समस्त सुकृतरूपी धान्य की राशि को ( पोषण देकर ) सन्तोष देनेवाली मेघमाला है—ऐसी यह समिति जयवन्त है।



## श्लोक-८२ पर प्रवचन

८२ वाँ कलश ।

जयति समितिरेषा शीलमूलं मुनीनां,  
त्रसहति-परिदूरा स्थावराणां हतेर्वा ।  
भवदवपरितापक्लेशजीमूतमाला,  
सकलसुकृतसीत्यानीकसन्तोषदायी ॥८२॥

श्लोकार्थ... आहाहा! जो ( समिति ),... निश्चय । यहाँ तो यह कहा । आत्मा अनन्त आनन्द का सागर है । उस आत्मा में शुद्धपरिणति अथवा धर्म में, उसके धर्मों में एकाग्रता की परिणति, वह । ( समिति ), मुनियों को शील का ( चारित्र का ) मूल है,... चारित्र का वह मूल है । यह निश्चयसमिति, हों ! लोग शान्ति से स्वाध्याय भी नहीं करते । ऐसा का ऐसा हाँकते ही जाते हैं । पढ़े ( जाते हैं ) । धूल में भी उसमें कुछ नहीं है । आहाहा ! एक-एक गाथा पढ़े तो खबर पड़े कि यह सब तेरा उल्टा है । अरे ! ऐसे अवसर में, ऐसे काल में मनुष्यभव में भव के अभाव की बात न जँचे, और न समझे तो यह इसने क्या किया ? बाकी तो सब ढोर भी खाना-पीना करते हैं ।

यहाँ तो कहते हैं, जो स्वरूप आत्मा का भगवान आत्मा अथवा उसके आनन्द आदि धर्म, उसमें जो एकाकार होकर परिणमता है, उसे निश्चयसमिति कहते हैं । वह निश्चयसमिति चारित्र का मूल है अर्थात् वही चारित्र है । समझ में आया ? जो त्रसजीवों के घात से तथा स्थावरजीवों के घात से समस्त प्रकार से दूर है,... एक पृथ्वी का एकेन्द्रिय जीव भी घात हो, उससे भी यह समिति दूर है । पानी की एक बूँद में असंख्य जीव हैं । कहते हैं कि मुनि के लिए पानी बनाया हो और ले, ऐसा है नहीं । दूरवर्ती है समिति । आहाहा ! यह ईर्या की बात है परन्तु यह सब समिति में ऐसा लेना ।

जीवों के घात से समस्त प्रकार से दूर है,... पृथ्वीकाय, अग्निकाय, वायुकाय, अपकाय—तेजकाय, वनस्पति और त्रस, छह काय के जीव से ( जीव के घात से ) दूर हैं । किसी भी एकेन्द्रिय जीव को दुःख हो, ऐसा भाव मुनि को नहीं होता । मुनि को । मुनि की बात है न ? यहाँ तो सब अध मण-अध मण पानी गर्म करे उनके लिए । उठावे, डाले

उसमें... क्या कहलाता है कमण्डल। मुनि को कमण्डल, और फिर पात्र। इतने-इतने बड़े पात्र भरें। भरकर मोतीशा की धर्मशाला में। वहाँ देखा था न हमारे यहाँ। हमारी बहन वहाँ रहती थी न? हरिबेन, हरकुँवरबेन नहीं? हरकुँवरबेन की नहीं वह शाला? वह हमारी बहिन थी। मोतीशा में उनके मालिक रहते थे। नाम भूल गये। लींबड़ी के थे हरकुँवरबेन, नहीं? उनकी शाला है पालीताणा में। बड़ी पाठशाला है। वह हरिबेन थी हमारी। हमारे बापू के बड़े भाई की लड़की। दादा की लड़की। वहाँ उतरे थे। मोतीशा की धर्मशाला में, संसार में थे तब हमारी बहिन थी। सब देखा था रसोड़ा-बसोड़ा। परन्तु यह तो (संवत्) १९६९ के वर्ष, हों! १९७० से पहले। भाई साथ में थे। शिवलालभाई साथ में थे। उनके सगे भाई और हमारे दादा के लड़के होते हैं, सब देखा था। साथ में यात्रा गये थे। १९६९ में दीक्षा लेने से पहले। सब कुछ ठिकाना नहीं होता। नीचे उतरकर लड्डू खाया था और तले हुए भुजिये। इतना बड़ा था। यह तो ऐसा बड़ा। पहले बहुत था। मैं और वे भाई थे। हरकुँवरबेन के सगे भाई! पहले... देरी लगोगी चलो न यहाँ थोड़ा खा लें। फिर गये घर। बेचारे उत्साह से दें, हों! यहाँ तो फिर हमारे पहिचान थी न, अरे रे! उसमें लोग प्रसन्न हों, लो!

कहते हैं कि त्रस और स्थावर के जीव से... एकेन्द्रिय की भी हिंसा हो, उससे मुनि तो दूर हैं। आहाहा! समस्त प्रकार से (दूर हैं)। छह काय के पीहर, लिखे सही, छह काय का ग्वाल। उनके लिए कच्चरघाण, उसके लिए पानी, आहार, चाय, दूध। कहते आवें कि भाई आज आना, हों! भुजिया-बुजिया है हमारे यहाँ। दोपहर को आना। कुकर्म करते हैं न? सन्त, मुनि तो त्रस और स्थावर के घात से दूर हैं।

**जो भव—दावानल के परितापरूपी क्लेश को शान्त करनेवाली... आहाहा!** भव दावानल का परिताप-क्लेश सुलगा है, प्रभु! आहाहा! यह मिथ्यात्व राग-द्वेष के परिणाम दावानल हैं, कहते हैं। आहाहा! यह क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष के भाव दावानल सुलगता संसार है। आहाहा! ऐसे भव—दावानल के परितापरूपी क्लेश को शान्त करनेवाली तथा समस्त सुकृतरूपी धान्य की राशि को (पोषण देकर) सन्तोष देनेवाली... अनाज बोया होवे न? पश्चात् वर्षा-मेघमाला ठीक से आवे। मेघमाला ऐसी ठीक से आवे न? देखो न! छींटे ऐसे ठीक से आवें, माला जैसे लगें। ऐसे निश्चयसमिति, आत्मा की वीतराग शुद्धपरिणतिरूपी समिति, इसके सुकृत अर्थात् शुद्धता के जितने गुण

के अंकुर-धान्य, ऐसी जो राशि है, उसे समिति सन्तोष देनेवाली मेघमाला है। ऐसी यह समिति जयवन्त है। आहाहा! मुनि ऐसा कहते हैं कि वह समिति हमारे पास है। समझ में आया? आहाहा! वह जयवन्त वर्तती है। हमारी परिणति हमारे पास है, ऐसा कहते हैं। जयवन्त वर्तती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि दिगम्बर सन्त थे। ९०० वर्ष पहले आनन्दकन्द में झूलते थे। कहते हैं कि आत्मा के अनन्त गुण के अंकुर जितने फूटे हैं, उन सबको समिति मेघमाला समान धान्य को पोषण देनेवाली है। वह जयवन्त वर्तो, कहते हैं। आहाहा!

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव! )